नाट्यम् 91-94

रामजी उपाध्याय का नाट्य साहित्य

नाट्यम् **91-94, अक्टूबर 2019-सितम्बर 2020**
रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की पूर्वसमीक्षित त्रैमासिक शोधपत्रिका
रामजी उपाध्याय का नाट्य साहित्य (शताब्दी स्मरण विशेषांक)
ISSN : 2229-5550
UGC Approved Journal Sr. No. 41002
नाट्य परिषद् **(पंजीकरण क्र. 100066)**
संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-264366 पिन-470 003

Natyam : A Quarterly Journal of theatre and aesthetics
published by Natya Parisad. Deptt. of Sanskrit,
Doctor Harisingh Gour University, Sagar,
Madhya Pradesh-Pin-470 003. India.
Phone-Fax (off.) : 07582-297149

सदस्यता शुल्क :
विशेषांक - 200/- रु.
प्रत्येक अंक - 25/- रु., वार्षिक - 100/- रु.
आजीवन (प्रति व्यक्ति) - 1000/- रु.
आजीवन (प्रति संस्था) - 5000/- रु.
इस अंक का मूल्य - 200/- रु.

यह शुल्क मनीआर्डर, चेक या नगद दिया जा सकता है
जो नाट्य परिषद्, सागर के नाम देय होगा।

पत्रव्यवहार :
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003
e-mail : sanskritsagar1946@gmail.com, Mob : +919425656284
© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रण : अजय जैन, **अमन प्रकाशन** नमक मंडी,
कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

नाट्यम् में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तु
के लिए *नाट्य परिषद्* से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति अथवा विचारों से *नाट्य परिषद्*, संपादक या संपादक मंडल की सहम
अनिवार्य नहीं है।

सूचना - आजीवन ग्राहकों को डाक व्यय 250 रु. (दो सौ पचास रूपये मात्र) पर नाट्यम् के उपलब्ध पु
अंक भी निःशुल्क देय हैं।

18. नन्दगौतमीयम् : एक विवेचन 143
शालिनी सक्सेना
19. नवीन उद्भावनाओं का अतिरंजित चित्रण और विश्वविजय नाटक 151
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
20. नन्दगौतमीयम् में अलंकार-योजना 158
सन्दीप कुमार यादव
21. मानवीय उत्थान में मालवीय जी की भूमिका : 162
आचार्य रामजी उपाध्याय की दृष्टि में
किरण आर्या
22. आचार्य रामजी उपाध्याय के नाटकों में जीवन दृष्टि 169
अर्चना जोशी
23. आचार्य रामजी उपाध्याय के नाटकों में मानव-मूल्य 177
रामाश्रय राजभर
24. रामजी उपाध्याय के नाटकों में लोकहित की प्रतिष्ठा 185
नौनिहाल गौतम
25. रामजी उपाध्याय के नाटकों में लोकहित चिन्तन 190
प्रभातकुमार सिंह
26. रामजी उपाध्याय के नाटकों की दार्शनिक समीक्षा 196
रवीन्द्र कुमार पंथ
27. रामजी उपाध्याय के नाटकों में गंगा माहात्म्य 202
निकिता यादव
28. रामजी उपाध्याय के नाटकों में रूढ़ियों का निराकरण 208
प्रभाशंकर शुक्ल
29. रामजी उपाध्याय के नाटकों में रस 214
पूनम यादव
30. रामजी उपाध्याय के नाटकों में नायक-नायिका 219
अरुण कुमार निषाद
31. रामजी उपाध्याय के नाटकों में रीति-विचार 225
शिवपूजन चौरसिया
32. रामजी उपाध्याय के नाटकों में औचित्य 233
नीरज कुमार
33. नन्दगौतमीयम् में विश्वशान्ति 241
मैत्रयी कुमारी
34. रामजी उपाध्याय के नाटकों में भाषिक सौन्दर्य 245
सरोज कौशल
- लेखकों के पते 254

21

मानवीय उत्थान में मालवीय जी की भूमिका : आचार्य रामजी उपाध्याय की दृष्टि में

किरण आर्या

'संसरति इति संसारः' कालचक्र बिना चक्कों के तीव्र गति से पथ को नापता रहता है, उस कालचक्र में तत्समय की सभ्यतायें, संस्कृति, संस्कार आते रहते हैं और उनमें परिवर्तन होता रहता है। नभचर, जलचर, थलचर आदि अनेक जीव जगत् में जन्म लेते हैं और चले जाते हैं। किन्तु इन विभिन्न जीवों में मनुष्य ही एक ऐसा मस्तिष्क वाला प्राणी है जो अपने इतिहास पर विचार करता है, वर्तमान को सहेजता है और भविष्य का चिन्तन करता है। उस चिन्तन की अनेक दिशायें होती हैं कभी वह गलत दिशा को पकड़ लेता है और कभी सही दिशा के पथ पर चलकर शरीर से न सही किन्तु नाम से अमरत्व को, कीर्ति से अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। उसी कीर्ति के अमरत्व को प्राप्त करने वालों में एक हैं पं. मदन मोहन मालवीय जी। जिन्होंने शैशवावस्था से ही राष्ट्रचिन्तन को अपने हृदय में उतारा। दृढ़कर्त्तव्यता को सुदृढ़ करने का संकल्प लिया, मानव सेवा के लिये अपने को समर्पित किया, निश्चित रूप से कहीं न कहीं महामना मालवीय जी को अध्ययन काल में महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकानंद आदि की जीवनी से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है। पं. मदन मोहन मालवीय जी के शरीर का रंग उतना साफ नहीं था जितनी उनकी कीर्ति धवलता को प्राप्त थी। उन्होंने कभी कोई कार्य करने में संकोच नहीं किया, लज्जा का अनुभव नहीं किया, मन में कभी हीन भावना उत्पन्न नहीं होने दी और अपनी संकल्पना से कभी समझौता नहीं किया। आचार्य रामजी उपाध्याय अपने नाटक मदनमोहनमालवी कीर्तिमंजरी में लिखते हैं कि, वे निजाम जैसे लोगों के यहाँ भी भिक्षा मांगने का साहस रखते थे। मेरे देश के लोग शिक्षित हों, विचारयुक्त हों तथा आत्मनिर्भर हों, यह मन्थन अहर्निश मालवीय जी के मस्तिष्क

में चलता रहता था। यही कारण है कि महात्मा गांधी जी ने स्वयं यह बात कही कि, "मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी और को नहीं मानता, मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ। संसार में मालवीय जी से बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं हुआ। हमेशा मांगा करते हैं। वे जहां जाते हैं, उन्हें पैसे मिल जाते हैं उनका भिक्षा पात्र सदा खाली रहता है। उनके लिए भिक्षा लेने और देने के लिए सबसे द्वार खुले रहते हैं। वे सादा जीवन उच्च चिन्तन के सजीव उदाहरण हैं।"[1] गांधी जी के अनुसार मालवीय जी प्रातः स्मरणीय हैं, महर्षि हैं।

भारत ही नहीं, देश विदेश घूमने वाले, राष्ट्र चिन्तन के परम उपासक, गीता से अपनी दैनन्दिनी प्रारम्भ करने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसा महान् व्यक्ति अगर मालवीय जी के लिए उक्त उद्‌गार अपने हृदय में रखता है तो निश्चित रूप से महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी में कुछ विशेषत्व तो होगा ही। मालवीय जी की कार्यशैली का ही प्रभाव था कि संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् को मालवीय जी के लिए मदनमोहनमालवी कीर्तिमंजरी जैसे नाटक को लिखने की प्रेरणा हुई।

पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपनी कर्मभूमि तथा कार्यशैली की शुरुआत प्रयाग से प्रारम्भ की, चूंकि प्रयाग में न केवल नदियों का संगम है अपितु भारतीय संस्कृति और संस्कारों का मिला जुला संगम दृष्टिगत होता है। पं. मदन मोहन मालवीय जी शरीर से जितने परिश्रमी व मजबूत दिखाई देते थे उतने ही हृदय से विह्वल, भावुक तथा कोमल थे। धर्मज्ञानोपदेश की पाठशाला में पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अनेक प्रकार की शिक्षा दीक्षा को ग्रहण किया। एक बार एक कुत्ते के बच्चे का कान कटा देखकर मालवीय जी बहुत दुःखी हुये और विचार किया कि कैसे भी हो मैं इस कुत्ते का कान ठीक करूंगा, तथा वे बाजार से गुड़ दवा आदि क्रय करके लाते हैं और उस कुत्ते के बच्चे के साथ दौड़कर उससे ऐसे कहते हैं मानो वह इनकी पूरी बात समझ रहा हो- अरे माणिक! धन्योऽस्मि अकस्मात्तवात्र संगमनेन। त्वामद्य यथापूर्वं सम्यगुपचरितुं प्रत्यूषकालादेव मृगयमाण आसम्। उपचारवार्त्तां श्रुत्वैव त्वं पलायितुं त्वरसे व्रणविरोपणं तु करणीयमेव। वैद्यनिर्देशानुसारेणौषधं शृङ्गकं चानीतवानस्मि। तव जठराग्निशान्तये गुडो मया क्रीतः। तस्यास्वादेनोपचारयन्त्र्णामवधूय त्वं तारं न भविष्यसि। गृहाणैतद्‌गुडगोलकम्।[2] वे कुत्ते के बच्चे से कहते हैं- तुम गुड़ खाओ और मैं तुम्हारे लिये जो दवा लाया हूँ वह लगाने दो ताकि तुम्हारे कान का घाव ठीक हो जाये। यह प्रसंग आचार्य रामजी ने

नाटक के प्रथम अंक में उद्धृत किया है। शिक्षा का वास्तविक मूल्य, वास्तविक लक्ष्य यही होना चाहिये कि दूसरों के कष्ट का हरण करें, दूसरों के दुःखों को दूर करें, न्यूनता की पूर्ति करें। शास्त्राध्ययन, अनुसंधान के प्रयोग तभी सफलता को प्राप्त कर सकते हैं जब वे मानवीय उत्थान के लिये। कुछ अलग से कर दिखाने के लिये अपने को प्रथम पंक्ति में रखे।

पं. मदन मोहन मालवीय जी ने अपने गुरुओं से, आचार्यों से जो भी सीखा उसका पूर्णतया अपने जीवन में पालन किया। वे कभी भी वक्तृत्व और कृतित्व में अन्तर नहीं करते थे। मित्रमण्डली के साथ उनका जो व्यवहार था वह आपस में भी नूतन प्रयोगों का आभास दिलाता रहता था। पाठशाला में अध्ययनकाल के समय मालवीय जी अपने इष्ट मित्रों के साथ पुष्प चुनने के लिये वाटिका में जाते थे। संगम की नगरी में यदि सन्ध्या के बिना शिक्षा प्राप्त की जाये, यह आचार्यगण उचित नहीं मानते थे अतः पूजादि के लिये पुष्पों की आवश्यकता होती थी जिस हेतु मालवीय जी अपनी टोली के साथ पुष्पवाटिका पहुंचते हैं। बाल्यपन की अवस्था में स्वभावतः मित्रमण्डली के कुछ साथी पेड़ पर चढ़ जाते हैं, कोई दण्डे से पुष्पों को प्राप्त करना चाहता है, तो कोई टहनियों को हठात् झुकाकर पुष्पों को एकत्रित करना चाहता है किन्तु मदन मोहन को यह सब अच्छा नहीं लगता और वे अपने मित्रें को सदुपदेश देते हैं- किं न त्वं विनीतोऽसि यद् वृक्षलतादयः स्वीयसर्वोत्तमकुसुमानि स्वमातुः पृथिवीदेव्याः पूजार्थं तस्याः क्रोडं विकिरन्ति... न खलु पुष्पाय वृक्षरोहणमावश्यकम्। आगच्छत पुष्पावचयात् प्राग्वृक्षदेवतां स्तोतुम्। अयं वृद्धाचारः।[3] अर्थात् जितने भी पेड़ पौधे हैं ये सब हम आपके लिये ही पुष्प देने के लिए हैं अतः हमें इनको बिना कष्ट दिये, उनकी स्तुति करके ही पुष्प प्राप्त करना चाहिए। पुनः वे एक मित्र से कहते हैं कि तुम उस टहनी के पास जाओ तुम्हें वहां पुष्प मिल जायेंगे। यह संयोग की ही बात थी कि मित्र वहाँ पहुंचता है और तीव्र वायु के कारण वह शाखा हिली और पुष्प नीचे आ गिरे। पं. मालवीय जी वहां इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वृक्ष भी सबसे पहले अपनी धरती मां की पूजा करते हैं और जो उन्होंने गुरुमुख से पढ़ा था- माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः यह चरितार्थ होता है। 'मातृदेवो भव' की अलख उस समय उन विद्यार्थियों को जागृत करने का कार्य करती है। बात-बात में पं. मदन मोहन मालवीय जी अपने मित्र राकेश से संवाद में कह जाते हैं जो जीवन के विषय में सोचने के लिये, मानवता को ग्रहण करने के लिए मजबूर करती है। वे शब्द थे- हे

मित्र! पहले पुष्पों से शिक्षा लो कि यह दुनियां चलाचली का मेला है, रात में कली, सबेरे खिला पुष्प और दुपहरे मुरझाये।

मदन मोहन जी की इन पंक्तियों से ऐसा लगता है कि जीवन की तीन अवस्थाओं को उन्होंने केन्द्रित करते हुये ये दार्शनिक शब्द कहे होंगे- जब पुष्प अपने अस्तित्व पर होता है अर्थात् यौवनावस्था पर होता है तो उसके महत्त्व की कोई सीमा नहीं होती वो कभी किसी महामानव के गले का हार, किसी देवता के मस्तिष्क की शोभा, किसी मृत शहीद के शव को सुगन्धित करता हुआ पाया जाता है किन्तु वही पुष्प जब मुरझा जाता है, सूख जाता है किसी कार्य के लायक नहीं रहता तब वो एक कचरे के अतिरिक्त, अप्रयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं होता, केवल वह कूड़े के साथ अग्नि को बढ़ाने का कार्य करता है, कभी जला दिया जाता है या फेंक दिया जाता है। ऐसा ही मनुष्य का जीवन है यदि शैशवावस्था से प्रारम्भ से धीरे-धीरे संभलते रहे तो यह जीवन किसी खिले हुए पुष्प से कम नहीं होगा किन्तु इसे संवारा न गया, सहेजा न गया तो अपनी शाखा से टूटकर महत्त्वहीन ही पाया जायेगा। अतः जीवन को सहेजना, गुणों का समावेश होना, स्वधर्म के अनुरूप कर्त्तव्यनिष्ठता को धारण करना, यह मानवीयता के प्रमुख लक्षणों में से कुछ लक्षण हैं जो पं. मदन मोहन मालवीय जी में शैशवावस्था से दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार मालवीय जी न केवल पढ़ते थे अपितु किये हुये अध्ययन का प्रयोग भी अपने साथियों के साथ करते थे। यही कारण था कि जिस बालक को खेलकूद के आंगन में होना चाहिए था। वह संसार की अशिक्षा, करुणा, दीनता, गरीबी आदि को हृदय में रखकर मानसिक चिन्तन में निमग्न रहता था।

मालवीय जी केवल एक अच्छे सम्पादक ही नहीं थे अपितु उनके सम्पादन में पत्र 'हिन्दुस्तान' अपनी लोकप्रियता के शिखर पर था। मालवीय जी सम्पादकीय लिखते समय राष्ट्रभावना को मन में संजोकर बैठते थे। यही कारण था कि न चाहते हुये भी देशप्रेम की गाथायें उनके पत्र में स्वतः रेखांकित हो जाती थीं क्योंकि परतन्त्रता को मालवीय जी ने बहुत निकटता से देखा था। अतः यह कहने में संकोच नहीं होता कि मालवीय जी ने देश सेवा करने की असीम योग्यता थी और उतनी ही लगनशीलता भी। आचार्य रामजी उपाध्याय ने मदनमोहनमालवीय कीर्तिमंजरी में लिखा है कि - हिन्दुस्तान पत्र में मालवीय जी के राष्ट्रभक्ति विषयक विचार प्राप्त होते रहते थे जिससे वे अखिल भारतीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सफल हुये।[4]

शास्त्रों से लेकर लोक-प्रसिद्धि तक विनम्रता के महत्त्व को दर्शाया गया है और वह विनम्रता यदि वाणी में स्थान बना ले तो शायद वाग्देवी की असीम कृपा समझी जाती है। पं. मदन मोहन मालवीय जी में यह विशेषता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। वे अत्यधिक विनयशील थे, उनकी वाणी में माधुर्य गुण दिखाई देता था, किसी भी परिस्थिति में उन्होंने माधुर्यता की चादर को छोड़ा नहीं। अत एव आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहा करते थे कि स्नेह और ममता मालवीय जी के हृदय में कितनी थी इसकी थाह कोई भी नहीं पा सकता। प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनकी अद्भुत मोहक वाणी सर्वार्थसिद्धि परक सामर्थ्यदायिनी थी। ऐसा लगता था कि वाणी में साक्षात् सरस्वती का निवास हो उनका जीवन आत्मनिवेदन का सर्वोच्च उदाहरण था।[5] इसी प्रसंग में आचार्य रामजी उपाध्याय लिखते हैं कि कालाकांकर में महाराज के यहाँ उनके संरक्षण में पं. मालवीय जी कार्य कर रहे थे तभी महाराज रामपाल सिंह मालवीय जी के पास आते हैं और उनसे बताते है कि मैंने दो दिन से अन्न जल ग्रहण नहीं किया है और पं. मोतीलाल नेहरू का सन्देश अपनी आंखों से झर-झर आंसू बहाते हुये सुनाते हैं- जिस पर वो कहते हैं कि शायद मदन मोहन को पाकर मैं यह समझ बैठा था कि मैं जग जीत गया हूँ किन्तु आज ऐसा लगता है कि मुझे आपका स्नेह अब यहीं से प्राप्त होना बन्द हो जायेगा क्योंकि मैं अपने निजी स्नेह और हित के कारण राष्ट्र की उस धरोहर को हमेशा के लिये अपने पास नहीं रख सकता। मुझसे स्पष्ट शब्दों में नेहरू जी ने कहा है कि भारत को मदन मोहन मालवीय जी की आवश्यकता है। उनका स्थान केवल कालाकांकर नहीं, उनका स्थान व्यापक है और तत्क्षण कालाकांकर से मालवीय जी की विदाई की तैयारियां वहाँ के महाराज रामपाल सिंह बड़े दुःखी मन से करने लगते हैं, तथा इसको वे धर्मसंकट भी मानते हैं अर्थात् मालवीय जी से एक नरेश के स्नेह के तन्तु इतने मजबूत हैं कि वे एक दूसरे के विषय में अनुशंसा प्रशंसा करते नहीं थकते, इससे यह प्रमाणित होता है कि मृदुभाषिता किसी सामान्य व्यक्ति में भी हो तो वह विराटता को अपने स्नेह के पाश में बांधने में समर्थ हो सकता है।[6]

महामना मदन मोहन मालवीय जी न केवल आध्यात्मिक आर्थिक रसात्मक प्रवृत्तियों के विकास के साथ थे अपितु वे यह मानते थे कि शारीरिक सौष्ठव की उत्तमता भी जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करने में सक्षम है जैसा कि कहा गया है- ''शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्'' इन विचारों से ओतप्रोत होकर वे भावी पीढ़ी को शारीरिक रूप से मजबूत देखना चाहते थे। एक बार जब वे अपने

विश्वविद्यालय में टहल रहे थे तब उन्होंने यह आदेश दिया था कि छात्रावास के निकट एक अखाड़ा जरूर होना चाहिए और उस समय के लक्ष्मणदास जो कि इंजीनियर थे उन्होंने यह बात मालवीय जी से स्वतः कही थी कि अखाड़े बन गये। छात्रवास के विद्यार्थी इस समय कुश्ती लड़ते देखे जा सकते हैं।[7] मालवीय जी अखाड़े पर पहुँच जाते हैं उस समय एक हारे हुये विद्यार्थी से मालवीय जी संवाद करते हैं और कहते हैं कि तुम कल से प्रतिदिन एक सेर दूध पिया करो और मुझसे द्रव्य लेकर ग्वाले को दे देना। मैं 1 महीने बाद पुनः तुम्हारी कुश्ती देखूंगा।[8] इस प्रोत्साहन और नियत स्थान पर जाकर विद्यार्थियों का मनोबल बढ़ाना एक कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व का परिचय है।

मालवीय जी ने शिक्षा के लिए जिस तरह का अथक परिश्रम, लज्जा को छोड़कर किसी के भी सामने हाथ फैला देना जैसे अनुपमेय कार्य किये हैं कि आने वाली पीढ़ी युगों तक उन पर गर्व का अनुभव करेगी। गंगा के तट पर जिस सुरम्य स्थान का पं. मालवीय जी ने चुनाव किया उससे न केवल मानवीय उत्थान, शिक्षा के परम उत्कर्ष को प्राप्त करने का ध्येय था अपितु आत्मोत्थान की भावना भी कहीं न कहीं पं. मालवीय जी के मन में समाई हुई थी, उसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जो उस समय लक्ष्मणदास नाम का इंजीनियर थे वे एक रुपया अपने वेतन से लेते थे बाकी रकम लक्ष्मणदास जी अतिथि गृह के लिए समर्पित कर देते थे।[9] पं. मदन मोहन मालवीय जी को उस समय हैदराबादी निजाम अच्छी तरह से जानता था उनकी प्रतिभा, उनकी संकल्पना से परिचित था किन्तु मालवीय जी ने अपने उस बड़प्पन को, उस स्वाभिमान को (कि मैं इतना नामी व्यक्ति हूँ) किनारे करते हुये भिक्षा लेने वालों की लाइन में खड़े हो जाना उचित समझा, क्योंकि उन्हें मंजिल प्राप्त करनी थी, पथ में कंकड़ों की गणना नहीं। वे किसी भी तरह से अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे, किन्तु महापुरुष और महान् व्यक्तित्व किसी परिचय का मोहताज नहीं होता, उन मांगने वालों की लाइन में भी मालवीय जी वामन भगवान् की तरह दृष्टिगोचर हो जाते हैं और निजाम उनसे मिलने के लिये सर्वप्रथम आदेश देता है। तथा परिचय प्राप्त होने के बाद भी निजाम से पं. जी वही मांगते हैं जो उन्होंने पहले से निश्चित कर रखा था।[10]

निजाम को यह अहसास हुआ कि पं. मालवीय जी के पास स्वतः का एक विराट् व्यक्तित्व के अतिरिक्त धनादि कुछ भी नहीं है, फिर भी मानवता के उद्धार

के लिये, शिक्षा के लिये इतना कुछ कर रहे हैं। हमारे पास सब कुछ होते हुये भी हम कुछ अधिक नहीं कर पा रहे। मालवीय जी इस सत्य घटना में प्रसंगवश निजाम के ये भाव आचार्य रामजी ने अपने नाटक में उद्धत किये हैं।''

इस प्रकार मालवीय जी एक महान् विचारक, प्रज्ञावान् युग पुरुष थे। वासुदेव शरण जी के अनुसार- ''सहस्रों वर्षों के अनन्तर ऐसा प्रज्ञाशील नेता सनातन धर्म के क्षेत्र में उत्पन्न हुआ था जो भीतर बाहर एक समान, मानवता की सेवा में अहर्निश तन, मन, धन से अपने आप को लीन कर देने वाले स्वयम्भू महामानव थे।'' वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओतप्रोत थे। मालवीय जी का नाम आज भी हर सहृदयी व्यक्ति के हृदय में अमिट छाप छोड़ता है। यही कारण है कि पं. मदनमोहन मालवीय जी की छवि आचार्य राम जी उपाध्याय के मन मस्तिष्क में समा गयी और लेखनी उनके विषय में कीर्तिमंजरी नाटक लिखने के लिये उद्वेलित हो उठी। मानवता की उस प्रतिमूर्ति को न केवल संस्कृत के विद्यार्थी होने के नाते हम प्रणमांजलि समर्पित करते हैं अपितु उस समय शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी अलख जगाने के लिए आतुर उस आत्मा को सम्पूर्ण मानव जाति प्रणमांजलि समर्पित करती है।

सन्दर्भ -

1. मदनमोहनमालवीय कीर्तिमंजरी-अवतरणिका, पृ.1
2. वही-प्रथमोऽङ्कः, पृ.3
3. वही-प्रथमोऽङ्कः, पृ.5-6
4. वही-अंक-2, पृ.12
5. वही-अवतरणिका, पृ.10
6. वही-अंक-2, पृ.14
7. वही-अंक-3, पृ.22
8. वही-अंक-3, पृ.23
9. वही-अंक-3, पृ.22
10. वही-अंक-4, पृ.37-38
11. वही-अंक-4, पृ.39